वेदों में इतिहास नहीं है

पं. रामनाथ जी वेदालंकार

है। विज्ञान यह मानता है कि इस पृथिवी की उत्पत्ति हुए करोड़ों वर्ष बीत चुके हैं। यदि वास्तव में बाइबल ईश्वरीय ज्ञान है तो उसमें ये विज्ञान विरोधी बातें क्यों पायी जाती हैं?

यही दशा कुरान शरीफ़ की है। एक सूरमें सूर्य को कीचड़ के समुद्र में डूबने वाला बताया गया है। सूर्य न तो कीचड़ के समुद्र में डूबता है और न किसी क्षीर सागर में। पृथिवी को अपने अक्ष पर परिभ्रमण करने से सूर्य उदय और अस्त होता हुआ प्रतीत होता है। इसी तरह एक जगह यह बताया गया है कि पहाड़ पृथिवी पर इस लिये रखे गये हैं कि पृथिवी हिल डुल न सके किन्तु स्थिर रहे। पहाड़ों को पेपरवेट का उद्देश्य पूरा करने वाला समझना विज्ञान के प्रतिकूल है।

वेद में इस प्रकार की एक भी विज्ञान विरोधी बात नहीं है। वेद में कहा गया है कि परमात्मा ने विश्व को संचालित करने के नियम बनाये। वेद में इन्हीं नियमों का बीज रूप से निदर्शन है। उदाहरणार्थ, पृथिवी के सूर्य के चारों ओर भ्रमण का उल्लेख यजुर्वेद ३।६ ऋग्वेद (८।२।१०।१) में है। अतः ईश्वरीय ज्ञान के विज्ञान सम्मत होने की कसौटी पर वेद ही खरे उतरते हैं।

हमारे देश में यह एक पौराणिक परिपाटी है कि भागीरथी के मुहाने गंगासागर से उसके मूल गंगोत्तरी तक तीर्थ यात्रा की जाती है। यदि हम विभिन्न धर्मों की भागीरथी के मूलस्रोत की यात्रा करें तो हम यह देखेंगे कि इस्लाम की धारा ईसाइयत से निकली है, ईसाइयत यहूदी धर्म व बौद्धधर्म की शाखा है, बौद्धधर्म प्राचीन वैदिक धर्म से प्रादुर्भूत हुआ है और यहूदी धर्म पारसी धर्म से। पारसी धर्म का मूल वैदिक धर्म है। इन सब धर्मों के ईश्वरीय माने जाने वाले ग्रन्थों का अन्तिम स्रोत वेद है। यह प्रश्न हो सकता है कि वेद का स्रोत क्या है? चारों ओर हिमाच्छादित शिखरों तथा हिमानियों से आवृत प्रदेश में पहुंच कर जब कोई यात्री यह प्रश्न करता है कि गंगोत्तरी की यह धारा कहां से प्रवाहित हो रही है तो उसे यही उत्तर दिया जाता है कि आकाश से गिरने वाले हिम से ही इस जान्हवी का उद्भव हुआ है। इसी प्रकार वेद का उद्भव भी सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वरीय वाणी से हुआ है। उसका मूल अन्यत्र नहीं खोजा जा सकता है। परमपिता परमात्मा ही उसके आदि मूल हैं। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में इसी महान् सत्य को अभिव्यक्त करते हुए कहा है—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।१।१।२६॥

वेदों में इतिहास नहीं है

(ले०—श्री पं० रामनाथ जी वेदालंकार, वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी)

वेदों में इतिहास नहीं है इस बात को हम प्रमाणित करने चले हैं। आइये पहले आप को एक किस्सा सुनायें। एक बार की बात है, किसी स्थान पर वेद के ऐतिहासिक सम्प्रदाय वालों का एक सम्मेलन होने वाला था। दूर दूर से ऐतिहासिक विद्वान् निमन्त्रित किये गये थे। सम्मेलन की कार्यवाही हो रही थी, संयोगवश हम भी वहाँ जा पहुँचे। बड़े बड़े विद्वानों ने अपने २ निबन्ध पढ़े। किसी ने वेदों में प्राचीन आर्य जाति के ऋषियों का इतिहास दिखाया, तो किसी ने राजाओं का इतिहास सुनाया। किसी ने आर्य और दस्युओं की लड़ाई का इतिहास प्रदर्शित किया, तो किसी ने नदी, नाले, पर्वत, जंगलों का इतिहास दिखाया। सब लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे और मन ही मन वक्ताओं की तारीफ़ कर रहे थे। कुछ लोग प्रकट में भी कह उठते थे—वाह, वाह! क्या

कहना है ! वेद को तो इन्होंने समझा है ! इधर हमारी यह हालत थी कि ज्यों-ज्यों हम विद्वानों के गवेषणा पूर्ण निबन्ध सुनते जाते थे त्यों-त्यों हमारे अन्दर यह इच्छा जागृति होती जाती थी कि हम भी कुछ बोलें। भगवान् को मनाने लगे, हे भगवान् ! हमें भी बोलने का मौका दिलाना, नहीं तो मन की मन में ही रह जायगी। इतने में ही जब सब बोलने वालों की सूची पूरी हो गई तब सभापति जी ने उठकर कहा—यदि कोई और सज्जन बोलना चाहें तो आ सकते हैं। हम तो इस प्रतीक्षा में ही थे। चट उठ खड़े हुए और कहना शुरू किया—भाइयो ! अभी तक आपने वेद में से भूतकाल के ही इतिहास सुने हैं, हम आपको वेद में से आधुनिक इतिहास सुनाना चाहते हैं। देखिये, बिहार की भूकम्प-पीड़ित जनता बिहाररत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी से कह रही है :—

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन् पाहि-असुर त्वमस्मान्।

त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ ऋग् १।१७४।१ ॥

(राजेन्द्र) हे बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ! (त्वम्) आप (ये च देवाः) तथा अन्य जो देवपुरुष [महात्मा गान्धी जी, पं० जवाहरलाल जी आदि] हैं वे सब मिल कर (नृन्) [भूकम्प-पीड़ित] लोगों की (रक्ष) रक्षा कीजिये। (असु-र) हे दुखियों को जीवन देने वाले राजेन्द्रप्रसाद जी ! (त्वम् अस्मान् पाहि) आप हमारा पालन कीजिये। (त्वं सत्पतिः) आप ही हमारे सच्चे मालिक हैं (मघवा) आप बहुत धनवान् हैं [क्योंकि स्थान २ से आपको बिहार की भूकम्प-पीड़ित जनता के लिये थैलियाँ भेजी गई हैं] (नः तरुत्रः) आप ही हमें इस कष्ट से तराने वाले हैं, (त्वं सत्यः) आप सच्चे हैं (वसवानः) [लाखों नंगे भूकम्प-पीड़ितों का] तन ढकने वाले हैं, और (सहोदाः) उन्हें बल देने वाले हैं।

मेरे इस इतिहास को सुनकर कुछ तो हंसने लगे, मानो हँसी में ही मेरी बात को उड़ा देना चाहते हों, कुछ मुझ पर बुरी तरह प्रकुपित होने लगे। सभापति जी भी कहने लगे—आप बैठ जाइये बैठ जाइये, आगे बोलने की आप को इजाज़त नहीं है, ऐतिहासिक लोग बोल उठे यह आर्यसमाजी लगता है, हमारा विरोधी है, हमारे बने-बनाये इतिहास के महल को गिराना चाहता है, यह हमारी मज़ाक बनाने आया है, इसका बहिष्कार करो, इसे भगाओ यहाँ से आदि आदि। मैंने हाथ जोड़ कर कहा - भाइयो ! मेरा क्या कसूर है, मैं तो आप के ही पक्ष की पुष्टि कर रहा हूँ। मैंने तो आपही की तरह वेद के एक छिपे हुए ऐतिहासिक स्थल को स्पष्ट किया है। वे सबके सब एक साथ बोल उठे—अरे मूर्ख, क्या तू नहीं जानता, वेद तो आज से सहस्रों वर्ष पुराने हैं, उनमें आज की घटनाओं का ज़िक्र कैसे हो सकता है ? हम तो प्राचीन घटनाओं को वेद में दिखाते हैं, हमारी-तेरी बराबरी कैसी ! तू अपनी व्याख्या को हमारी व्याख्याओं के सदृश बताकर हमारा भी उपहास करना चाहता है ! जो ऋग्वेद का मन्त्र तूने बोला है उसमें तो स्पष्ट ही 'राजेन्द्र' पद से राजा का ग्रहण है। प्रजाजन अपने राजा से कह रहे हैं कि आप हम सबका रक्षण और पालन कीजिये। यहाँ बाबू राजेन्द्रप्रसाद कहाँ से आ टपके !

मैंने कहा, अरे भाई ! मेरी इस व्याख्या पर तो तुम हंसते हो, लेकिन असल में देखा जाये तो वेद की जितनी ऐतिहासिक व्याख्यायें हैं वे सब ही इसी कोटि की ठहरेंगी। तुम भी तो यही करते हो कि जहाँ कहीं वेद में ऐतिहासिक नाम देखा झट उसकी ऐतिहासिक व्याख्या कर डाली। यह तो

तुम कहते हो कि वेद बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी से सहस्रों वर्ष पहले के हैं इसलिये उनमें उनका वर्णन नहीं हो सकता, लेकिन इसी युक्ति को तुम अपनी ऐतिहासिक व्याख्याओं में भी लागू क्यों नहीं करते ! जैसे वेद बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी से सहस्रों वर्ष पहले के हैं वैसे ही वे ऋषि विश्वामित्र, अत्रि, जमदग्नि भृगु, अंगिरा आदि से भी सहस्रों वर्ष पुराने हैं। इसलिये उनमें राजेन्द्र बाबू की तरह ही इन ऋषियों का भी वर्णन नहीं हो सकता। जैसे यहाँ नाम-साम्य के होते हुए भी 'राजेन्द्र' पद से राजेन्द्र बाबू से अतिरिक्त कोई और ही अर्थ अभिप्रेत है वैसे ही जिन मन्त्रों में विश्वामित्र आदि नाम आते हैं वहाँ भी विश्वामित्र आदि पदों से उन-उन ऐतिहासिक ऋषि-मुनियों का ग्रहण अभिप्रेत नहीं किन्तु दूसरा ही कुछ अर्थ अभिप्रेत है। आज क्योंकि दुर्भाग्यवश प्राचीन सब इतिहास ब्यौरेवार उपलब्ध नहीं है इसलिये लोग भ्रमवश यह समझ बैठते हैं कि विश्वामित्र प्रभृति ऋषि वेदों से पहले के हैं और वेदों में उन्हीं का वर्णन है। कल्पना करिये, आज से बहुत अरसा ५०—६० शताब्दी या इससे भी अधिक बीत जाने पर बहुत सी ऐतिहासिक-परम्परा जो आजकल उपलब्ध भी है लुप्त हो जाती है। तिथि क्रम-रहित कुछ मुख्य २ व्यक्तियों की घटनायें कहानी के रूप में अवशिष्ट रह जाती हैं। मान लीजिये उनमें राजेन्द्र बाबू की कहानी भी बची रहती है। अब देखिये, उस समय क्या अवस्था होगी। लोगों के सामने वेद भी होंगे, यह भी उन्हें मालूम होगा कि प्राचीन काल में बाबू राजेन्द्रप्रसाद नामक एक महापुरुष हो चुके हैं किन्तु ऐतिहासिक परम्परा के लुप्त हो जाने से उन्हें यह सचाई नहीं मालूम होगी कि राजेन्द्र बाबू तो वेदों से सहस्रों वर्ष पीछे के हैं। इसलिये उस समय जो लोग वेदों में ऐतिहासिक सामग्री का अन्वेषण करने बैठेंगे तो क्या आश्चर्य कि ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र का वे वही अर्थ कर बैठें जो हमने किया है, अर्थात् वेद के 'राजेन्द्र' पद से वे राजेन्द्र बाबू का ही ग्रहण करने लगें ! आज तो ऐतिहासिक लोग ही इस अर्थ को एक मज़ाक की वस्तु समझते हैं, लेकिन उस समय यदि कोई इस प्रकार के अर्थों का आविष्कार करेगा तो उसे विद्वान्, स्कालर आदि न जाने क्या २ पदवी दे दी जायेंगी। उस समय यदि कोई कहेगा कि अरे भाई, यहाँ तो राजेन्द्र पद से राजा का ग्रहण है तो ऐतिहासिक विद्वन्मण्डली कट्टर, अन्धविश्वासी आदि विशेषणों में उसका उपहास करेगी, जैसा कि आजकल किया जाता है।

अस्तु, पाठकगण ! ऊपर का यह एक काल्पनिक किस्सा हमने यह दिखाने के लिये लिखा है कि जिससे स्पष्ट हो जाय कि वेद की ऐतिहासिक व्याख्याओं का महल कितनी कमज़ोर भित्ति पर बना हुआ है, यद्यपि देखने में वह बड़ा सुदृढ़ और आकर्षक प्रतीत होता है। यदि वेदार्थ में ऐतिहासिक व्याख्या के मार्ग का अनुसरण बढ़ता गया तो धीरे २ वेद की धज्जी-धज्जी उड़ जायेगी। उसमें कुछ भी तत्व की बात नहीं बचेगी। सब जगह इतिहास ही इतिहास दीखने लगेगा।

वेद के अनेक ऐसे स्थल हम उद्धृत कर सकते हैं जिनमें ऐतिहासिक नाम आये हैं तो भी आज ऐतिहासिक लोग उनका इतिहास-परक अर्थ न करके दूसरा ही अर्थ करते हैं। लेकिन कौन कह सकता है कि आज उनका इतिहास परक अर्थ नहीं किया जाता तो आगे भी नहीं किया जायेगा ! अथर्ववेद का एक प्रसिद्ध मन्त्र है:—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥१०।२।३१

इसमें देहपुरी को अयोध्यानगरी के नाम से स्मरण किया गया है। मनुष्य का शरीर मानो एक देव-पुरी है। इसमें आँख, नाक, बुद्धि आदि देव आकर बैठे हुए हैं। यह अयोध्या इसलिये है कि इसे पराजित कर सकना आसान नहीं है। इसमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, ललित, आज्ञा, सहस्रार ये आठ चक्र बने हुए हैं। नौ इसमें दरवाज़े हैं, दो चक्षुद्वार, दो नासिकाद्वार, दो श्रोत्रद्वार, एक मुखद्वार और दो अधोद्वार। अन्यत्र भी शरीर को नौ द्वारों वाला कहा गया है, जैसे "नवद्वारे पुरे देही" (गीता)। इसमें एक ज्योति से जगमगाता हुआ हृदय-कोश या हृदय-मन्दिर है; उसमें इस शरीर-नगरी का राजा आत्मा निवास करता है। इतिहासप्रिय भाष्यकारों ने भी यहाँ अयोध्या का अर्थ शरीर-नगरी ही लिया है। लेकिन बड़ी आसानी के साथ इस अयोध्या को रामचन्द्र जी की अयोध्या बनाया जा सकता है। राम की वह ऐतिहासिक अयोध्या ऐसी आदर्श नगरी थी कि मानो साक्षात् देव-पुरी हो, इस लिये वह 'देवानां पू:' हुई। उसमें आठ चक्र अर्थात् चक्राकार चौराहे और नौ मुख्य-द्वार थे। यदि इतिहास में ऐसा न भी मिलता हो कि राम की अयोध्या में आठ चक्र और नौ दरवाज़े थे तो भी कुछ बिगड़ता नहीं। यह कहा ही जा सकता है कि रामायण में ऐसा उल्लेख नहीं है तो न सही, लेकिन अवश्य ही उस अयोध्या में ८ चक्र और ९ द्वार होंगे, क्योंकि वेद में ऐसा लिखा है। उस अयोध्या में एक 'हिरण्यय कोश' अर्थात् सुनहरा राजमहल बना हुआ था जो मानो स्वर्ग ही था। वह जगह २ पर हीरे, मणि, मोती, आदि से दमक रहा था और रात्रि में दीपकों की ज्योति से अपूर्व शोभायमान हो उठता था, इसलिये उसे 'ज्योतिषावृत:' कहा। उस महल में राजा रामचन्द्र रहते थे। हमें धन्यवाद करना चाहिये ऐतिहासिक व्याख्याकारों का कि यहाँ उन्होंने यह ऐतिहासिक अर्थ नहीं किया। पर यदि वे करने लगें तो कौन उन्हें रोक सकता है। सैकड़ों लोग उनके अनुयायी मिल जायेंगे जो बड़ी शान से कहेंगे कि यहाँ वास्तविक अर्थ तो राम की अयोध्या ही है, शरीर-नगरी अर्थ तो खींचातानी है।

ऋग् १.३२.६ में 'महावीर' और ऋग् ३.४२.६ में 'धनञ्जय' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ये दोनों इन्द्र के विशेषण हैं। पर कौन कह सकता है कि ऐतिहासिकों की दृष्टि में भी ये सदा इन्द्र के विशेषण ही बने रहेंगे, वे इन्हें ठोकपीट कर जैनधर्म के प्रवर्तक महावीर तथा धनंजय अर्जुन नहीं बना लेंगे। क्या मालूम ऋग् ५.३२.११ में प्रयुक्त 'पांचजन्य' शब्द जो कि इन्द्र का विशेषण है ऐतिहासिक सम्प्रदाय में किसी वक्त गीता का 'पाञ्चजन्यं हृषीकेशः' वाला पांचजन्य शंख नहीं बन बैठेगा! किसे निश्चय है कि ऋग्वेद ५.३१.१ के अजातशत्रु इन्द्र किसी समय अजातशत्रु युधिष्ठिर नहीं हो जायेंगे! किसे खतरा नहीं है कि ऋग् ५.३४.६ का 'विभीषण इन्द्र' ऐतिहासिक परम्परा में आगे चल कर रावण का भाई विभीषण बन जायेगा और अथर्व ४.६.१ का 'दशशीर्ष दशास्य ब्राह्मण' सूर्य का वाची न रह कर दस सिरों और दस मुखों वाले रावण का वाची हो जायेगा! क्या मालूम ऋग् १.१२६.४ में आये 'दशरथ' शब्द से कभी श्रीराम के पिता दशरथ को ग्रहण किया जाने लगे, और ऋग् १०.१०७ में भोज नाम से जो दानी की स्तुति है उसे ऐतिहासिक भोज राजा की स्तुति समझ लिया जाये! वेद में जो कई जगह कृष्ण तथा अर्जुन शब्द इकट्ठे आये हैं उससे क्या मालूम यह समझा जाने लगे कि इसका सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण-अर्जुन के साथ है और यजु० १६. ४३ में जो 'पुलस्ति' शब्द आया है उसे शायद रावण के पितामह पुलस्त्य से मिला दिया जाये। ऋग् १. ८०. ७ में इन्द्र को कहा है कि तूने अपनी माया से मायावी

मृग को मार डाला ; इसका सम्बन्ध शायद कभी राम के मारीच मृग को मारने के साथ जुड़ जाये। ऋग् २. ७. १ आदि कई मन्त्रों में अग्नि को 'भारत' कहा गया है, इससे संभव है कभी यह कल्पना कर ली जावे कि भरत राजा के किसी पुत्र का नाम अग्नि था, जिसकी स्तुति वेद में अग्नि नाम से की गई है और उससे धन-दौलत आदि मांगी गई है। क्या खबर आगे कभी ऐतिहासिकों की मति में अथर्व० ५. ७. १० के 'हिरण्यकशिपु' प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु जी बन जायें ! और तो और क्या मालूम कई शताब्दी गुज़र जाने के बाद कोई ऐतिहासिक अनुसन्धानकर्ता यही निबन्ध लिखकर डी० लिट् की पदवी प्राप्त करे कि ऋग्वेद के श्रद्धा-सूक्त का सम्बन्ध स्वामी श्रद्धानन्द से है; क्योंकि तब बड़ी ईमानदारी और गम्भीरता के साथ बखूबी यह युक्ति दी जा सकेगी कि यह समता अचानक ही नहीं हो सकती कि श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र का नाम भी 'इन्द्र' हो और वेद में भी श्रद्धा-सूक्त से ठीक अगला ही सूक्त 'इन्द्र' का सूक्त हो। और भाई, ऐतिहासिकों की लीला का क्या मालूम, यदि बहुत शताब्दियों पीछे तक आज के आज़ाद-हिन्द-फौज के नेता सुभासचन्द्र बोस की कहानी अमर बन गई और बहुत काल गुज़र जाने से संयोगवश इतिहास की यह कड़ी लुप्त हो गई कि सुभास बोस वेदों से बहुत-बहुत बाद के हैं, तब क्या मालूम ऋग्वेद ८.२३.२० में आये 'सुभास' पद से इन्हीं सुभास बोस का ग्रहण किया जाने लगे। क्योंकि मन्त्र में जो सुभास को 'शुक्रशोचि', 'विशामग्नि' और 'ईड्य' कहा गया है, यह नेता जी सुभास बोस के लिये बिल्कुल फिट बैठ जाता है। 'शुक्रशोचि' का अर्थ है तेजस्वी शरीर वाला, 'ईड्य' हुआ संमान के योग्य और निरुक्त तथा ब्राह्मणग्रन्थों से परिचय रखने वाले जानते ही हैं कि 'अग्नि' का अर्थ नेता होता है, इसलिये 'विशाम्-अग्नि' का अर्थ हुआ 'लोगों का नेता'! आज तो यह सब व्याख्या निसंदेह मज़ाक के रूप में ली जायेगी ; किन्तु कई शताब्दियों बाद का ऐतिहासिक इसे भी उतनी ही गम्भीरता के साथ स्थापित कर सकेगा जितनी गम्भीरता से आज वह यह स्थापित करता है कि ऋग्वेद तो आर्य तथा दस्युओं के ऐतिहासिक युद्ध का लेखामात्र है। क्या इस प्रकार के अनर्थकारी ऐतिहासिक सम्प्रदाय को आप वेदार्थ में प्रामाणिक मानने के लिये तैयार हैं ?

कहा जाता है कि ब्राह्मणग्रन्थ, रामायण, महाभारत और पुराणों की अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ वेदों में मिलती हैं। वस्तुतः यह ठीक भी है। किन्तु इस विचारधारा के मूल में थोड़ी सी भूल काम कर रही है। यह तो एक सर्वमान्य सिद्धान्त है जिसकी पुष्टि हमें इस लेख में करने की आवश्यकता नहीं कि अब तक जो भी प्राचीन से प्राचीन साहित्य उपलब्ध है उसमें वेद सबसे पुराने हैं। रामायण, महाभारत और पुराणों से भी वे निःसंदेह पुराने हैं। और ब्राह्मण ग्रन्थ तो बने ही वेद के आशय को स्पष्ट करने के लिये हैं; वे भी वेदों से उत्तरवर्ती ही हैं। इसलिये यह तो समझ आता है कि वेद के कुछ प्रकरणों को रोचक बनाने के लिये तथा सर्वसाधारण में प्रचारित करने के लिये बाद के साहित्य पुराण आदि में उन्हें कथानक का रूप दे दिया गया हो, किन्तु इसके विपरीत यह नहीं माना जा सकता कि पुराणों की कहानियाँ वेद में आ गई हैं। यह तो तभी हो सकता है यदि पहले यह सिद्ध किया जा सके कि पुराण आदि वेदों से पुराने हैं। पर इस बात को ऐतिहासिक लोग भी मानने को तैयार नहीं हैं। इसलिये हमें इसी दृष्टिकोण को लेकर चलना चाहिये कि जो कहानियाँ हैं वे वेदों से ब्राह्मणग्रन्थ, पुराण आदि पिछले साहित्य में गई हैं, न कि पुराण आदि से वेदों में आई हैं। और यदि इस बात को हम हृदयंगम कर लेंगे तो वेदार्थ करने में इस गलती से हम बचे रहेंगे कि जहाँ

कहीं वेद में कोई ऋषि, राजा आदि का नाम प्रतीत हुआ, झट हम पुराणों पर जा पहुँचे और वहाँ की कहानी देकर हमने समझ लिया कि बस वेदभाष्य हो गया; सायणाचार्य की तरह उस मन्त्र से सम्बद्ध कहानी हमने लिख दी और मान लिया कि अब न तो मन्त्र के खुलासा करने की कुछ आवश्यकता रही न संगति बैठाने की, यह कह दिया कि अमुक वेदमन्त्र पुराण की अमुक कहानी को बताने के लिये रचा गया है। अरे भाई, वेद का अमुक मंत्र पुराण की अमुक कहानी को बताने के उद्देश्य से रचा गया है यह तो बिल्कुल उल्टी बात हुई; बताना तो यह चाहिये कि अमुक वेदमन्त्र का आशय यह है और इसको लेकर पुराण की अमुक कहानी रची गई प्रतीत होती है। नीचे कुछ उदाहरण देकर हम इस बात को स्पष्ट करेंगे कि किस प्रकार वेद के सन्दर्भों को लेकर कथायें रच ली गई हैं।

दधीचि की हड्डियों से वृत्र को मारने की कथा

ऋग्वेद १।८४।१३ में दध्यङ् की हड्डियों से ९९ वृत्रों के मारे जाने का उल्लेख मिलता है। सामवेद तथा अथर्ववेद में भी यह मन्त्र आया है।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव॥

इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि "अद्वितीय इन्द्र ने दध्यङ् की हड्डियों के द्वारा ९९ वृत्रों को मार डाला।" इसी मन्त्र को लेकर बाद के साहित्य भागवत, महाभारत आदि में दधीचि की हड्डियों से वृत्र को मारने की कई प्रकार की आख्यायिकायें बन गई हैं। सायण ने इस मन्त्र पर शाट्यायनी का यह इतिहास उद्धृत किया है—एक बड़े प्रतापी ऋषि दध्यङ् थे। जब तक वे जीवित रहे असुरों को उपद्रव करने की हिम्मत नहीं हुई। किन्तु उनके स्वर्ग चले जाने पर पृथ्वी असुरों से छा गई। इन्द्र से भी वे असुर पराजित नहीं हो सके। इन्द्र ने सोचा चलो दध्यङ् ऋषि के पास चलें। पर पूछने से मालूम हुआ कि दध्यङ् तो स्वर्ग को चले गये। फिर इन्द्र ने कहा कि यदि दध्यङ् का कोई अंग ही मिल जाये तो भी काम चल सकता है। खोजने पर उनका सिर हाथ लग गया। उसी सिर की हड्डियों से इन्द्र ने असुरों को मारा।

महाभारत और भागवत में इस विषय की जो आख्यायिकायें मिलती हैं उनका भाव इस प्रकार है—वृत्र नाम के एक दैत्यराज ने सारी त्रिलोकी में उपद्रव मचा रखा था। देवता भी उसके उपद्रवों से तंग आ गये थे। बहुत उपाय किये, फिर भी वह नहीं मरा। उसे मारने का और कोई उपाय न देख इन्द्र सहित सब देवता ब्रह्मा जी (या विष्णु जी) की शरण में गये। उन्होंने यह उपाय बताया कि दधीचि (या दधीच) नाम के एक तपस्वी ऋषि हैं, वे यदि अपने शरीर की हड्डियाँ दे दें तो उनसे वृत्र मर सकता है। तब देवों के प्रार्थना करने पर दधीचि ऋषि ने अपना शरीर त्याग दिया। देवों ने उनकी हड्डियाँ लेकर वज्र तैयार कराया। उसी वज्र से इन्द्र ने वृत्र को मारा।

उपर्युक्त दोनों कथाओं में हम देख सकते हैं कि पर्याप्त अन्तर है। एक में तो मन्त्र के अनुसार दध्यङ् का दध्यङ् ही रहा है, किन्तु दूसरी में दध्यङ् का स्थान दधीच या दधीचि ने ले लिया है। पहली के अनुसार तो दध्यङ् ऋषि का आयु पूरी होने के बाद स्वयं प्राणान्त हुआ था और भाग्यवश उनके सिर (अश्व-शिर) का ढांचा बचा हुआ था, उसी की हड्डियों से इन्द्र ने असुरों को मारा। किन्तु दूसरी में यह बात नहीं है, वहाँ यह है कि दधीचि जीवित थे, देवताओं ने जाकर उनसे प्रार्थना की कि आपकी

हड्डियों की आवश्यकता है। देवों का काम चल जाये इसलिये दधीचि ने मरना स्वीकार कर लिया। दोनों कथाओं में यह अन्तर क्यों हो गया ? बात यह है कि यह कोई ऐतिहासिक घटना है ही नहीं। वेदमन्त्र को लेकर उस पर कल्पित कथायें बना ली गई हैं। मन्त्र में तो इतना ही संकेत है कि "दध्यङ् की हड्डियों से वृत्र मरा है", उसके आगे इसे पूरे कथानक का रूप देते समय कथाकार स्वतन्त्र है, जिस रंग में चाहे उसे रंग दे। आज भी यदि एक ही प्लौट या घटना पर दो कहानीकार कहानी लिखने बैठें तो दोनों अपनी २ प्रतिभा के अनुसार कुछ नये पात्रों को कल्पित करेंगे, कुछ घटना में हेर-फेर करेंगे, और दो सुन्दर कहानियाँ हमारे आगे प्रस्तुत हो जायेंगी। दोनों के मूल में घटना एक होते हुए भी दोनों पर्याप्त अन्तर लिये हुए होंगी। यही बात यहाँ भी है। यद्यपि दोनों आख्यायिकाओं का आधार एक ही मन्त्र है, तो भी क्योंकि उनके रचयिता अलग २ हैं इसलिये आख्यायिकाओं में परस्पर पर्याप्त अन्तर हो गया है।

अब हम मन्त्र के भाव पर आते हैं। सबसे पहली बात हमें यह समझ लेनी चाहिये कि मन्त्र में यह कहीं नहीं लिखा कि मरे हुए दध्यङ् की हड्डियों से वृत्र मारा गया। यह तो कहानी रचने वालों की अपनी कल्पना है। मन्त्र का दध्यङ् तो जीता-जागता शूरवीर है। यदि निर्जीव हड्डियों की ही ज़रूरत होती तो दध्यङ् की हड्डियों में ही क्या खासियत थी जो उनकी हड्डियों से वज्र बनाया जाता। हड्डी हड्डी तो सब एक सी। मान भी लें कि दध्यङ् की हड्डियाँ बड़ी मज़बूत थीं तो भी उसकी हड्डियों से ज्यादा मज़बूत हड्डियाँ अन्य बहुत से प्राणियों की मिल सकती थीं। और हड्डी को छोड़ कर लोहे आदि धातु का भी तो वज्र बन सकता था। इससे स्पष्ट है कि मृत दध्यङ् की हड्डियों से नहीं, बल्कि जीवित दध्यङ् की हड्डियों से वृत्र मरा है। किन्तु यह दध्यङ् है कौन ? यह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। निरुक्त की व्युत्पत्ति को ही लें तो—

"प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा, प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" १२।३३

ऐसा शूरवीर सेनापति दध्यङ् है जिसे एक मात्र यही ध्यान है कि कैसे शत्रु को पराजित किया जाये, और साथ ही जिसकी तरफ सारे राष्ट्र का ध्यान लगा हुआ है कि यह बाँका वीर अवश्य शत्रुओं के छक्के छुड़ा देगा। 'दध्यङ्' शब्द में एक और भाव यह भी है कि जो रणभूमि में डट कर संग्राम करने वाला है—'दधत् अञ्चतीति'। उस वीर की हड्डियों में ताकत है, उसकी हड्डियाँ मुलायम २ गद्दों पर सोने की अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें तो पत्थर से जूझने में ही मज़ा आता है। इन्द्र है राजा। भला जब राजा के राज्य में ऐसी मज़बूत हड्डियों वाला शूरवीर सेनापति होगा तब क्यों नहीं उसकी हड्डियों के बल से शत्रु रूपी वृत्र का संहार होगा। एक वृत्र क्या, यदि ९९ वृत्र भी मिलकर आ जायेंगे तो भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। ९९ की संख्या वेद में अनेक स्थानों पर आई है। ठीक-ठीक गिनती में निन्यानवे शत्रु ही दध्यङ् की हड्डियों से मरते हैं ऐसा आशय यहाँ नहीं है। हिन्दी में जब हम किसी वीर सिपाही की प्रशंसा में यह वाक्य बोलते हैं कि "एक क्या, उसने तो बीस का सफाया कर दिया", तो ठीक गिनती में बीस यह अभिप्राय नहीं होता, किन्तु बीस का अभिप्राय 'अनेक' होता है। ऐसे ही वेद की भाषा में यहाँ ९९ का अर्थ 'लगभग सारे' यह है। ९९ का अभिप्राय ९९ प्रतिशत ले सकते हैं। १०० में से ९९ को अर्थात् प्रायः सभी शत्रुओं को मार डाला है, कोई ही इक्का-दुक्का बच पाया होगा, यह

भाव है। तो सामान्यरूप से मन्त्र के आशय को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—"ऐ लोगो, देखो, जो राजा स्वयं 'अप्रतिष्कुत' है अर्थात् ऐसा है कि शत्रु उसका आसानी से प्रतिकार नहीं कर सकते और जिसका सेनापति है दध्यङ् जैसा वीर, वह सदा ही शत्रुओं को मारने में सफल हुआ है।"

आधिदैविक भाव—यह तो हुआ मन्त्र का आधिभौतिक अर्थ। आधिदैविक अर्थ में इन्द्र परमेश्वर है; 'दध्यङ्' सूर्य है। निरुक्तकार ने 'दध्यङ्' को पढ़ा भी द्यौस्थानीय देवों में ही है। निरुक्त की पूर्वोक्त व्युत्पत्ति के अनुसार सूर्य 'दध्यङ्' इसलिये है कि वह सदा अपने प्रकाशन के ध्यान में लगा रहता है, और सब प्राणियों का ध्यान भी उसकी ओर लगा रहता है। यदि 'दध्यङ्' सूर्य है तो उसकी हड्डियाँ होंगी सूर्य की किरणें। ६६ वृत्र हैं बादलों की अनेक टुकड़ियाँ। निरुक्तकार कहते हैं—"तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः, त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। २-१७", अर्थात् ऐतिहासिक लोग जो यह कहते हैं कि एक असुर का नाम वृत्र है जो कि त्वष्टा का लड़का था यह गलत है, वृत्र तो बादल है। बादल के अतिरिक्त शत्रुओं या राक्षसों को भी वृत्र कहते हैं। अथर्ववेद में अनेक जगह राक्षसवाची नामों से रोगों या रोग कृमियों को पुकारा गया है। तो रोग या रोग-कृमि भी वृत्र हुए। इस प्रकार मन्त्र का आधिदैविक अर्थ यह होगा कि—इन्द्र परमेश्वर ने सूर्य की किरणों से बादल की टुकड़ियों को या अनेक रोग-कृमियों को मार डाला।

आध्यात्मिक भाव—आध्यात्मिक अर्थ में इन्द्र आत्मा है। 'दध्यङ्' है भगवान् के ध्यान में लगा हुआ या जिसमें सब इन्द्रिय-देवों का ध्यान लगा रहता है ऐसा 'मन'। मन की हड्डियाँ क्या होंगी? जब मन रूपी दध्यङ् ऋषि स्वयं सूक्ष्म हैं तो उनकी हड्डियाँ भी वैसी ही सूक्ष्म होनी चाहिये। मन की सबल हड्डियाँ है उसकी उच्च मनोवृत्तियाँ। ६६ वृत्र हैं असंख्य पाप-वासनायें। मनुष्य के अन्दर एक देवासुर संग्राम चल रहा है। पाप-वासनायें मनुष्य के आत्मा पर अपना प्रभुत्व कर लेना चाहती हैं। किन्तु आत्मा को यदि भगवद्भजन तथा सद्विचारों में लीन मन रूपी दध्यङ् ऋषि मिल जायें तो उनकी उच्चमनोवृत्ति रूपी हड्डियों से वह अवश्य ही पाप-वासना रूपी सैंकड़ों वृत्रों का संहार कर सकता है। यही इस मन्त्र का आध्यात्मिक आशय है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मनुष्य के शरीर में वाणी 'दध्यङ्' ऋषि है—"वाग् वा दध्यङ् आथर्वणः"। वाणी की हड्डियों का अभिप्राय है 'वाग्वज्र'। जो मनुष्य 'अप्रतिष्कुत' है अर्थात् जिसकी युक्ति-परम्परायें ऐसी ज़बर्दस्त हैं कि उनका प्रतिकार करना कठिन हो जाता है, वह वीर मनुष्य अपनी वाणी की हड्डियों से, अपने वाग्वज्र से, असत्य का पक्ष लेने वाले बड़े से बड़े असुर-दल को परास्त कर सकेगा। ऋषि दयानन्द इसी कोटि के मनुष्य थे; इसलिये उनकी वाणी की हड्डियों की मार के आगे कोई भी प्रतिपक्षी नहीं टिक सका; जो असत्य का पक्ष लेकर शास्त्रार्थ करने आया वही उनके वाग्वज्र से पराजित होकर लौटा। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य 'अप्रतिष्कुत इन्द्र' बन कर अपने वाग्वज्र से प्रतिपक्षियों को परास्त कर सकता है, यह भी मन्त्र का भाव हो सकता है।

क्रिया भूतकाल की क्यों

आप कह सकते हैं यदि वेद को इतिहास बताना अभिप्रेत नहीं था तो उसने क्रिया भूतकाल की क्यों रखी ? मैं पूछता हूँ जब आप हिन्दी में यह वाक्य बोलते हैं कि "बहादुर ने ही विजय पाई है"

तब क्या आपका अभिप्राय किसी इतिहास को बताने से होता है ? 'विजय पाई है' इस भूत की क्रिया से आप इस सामान्य नियम को ही बताना चाहते हैं कि दुनियां में जो बहादुर होता है वही विजय पाता है। और यह सभी कालों के लिये सत्य है। इसप्रकार भूत की क्रिया से एक सार्वकालिक नियम को बताने की परिपाटी भाषाओं में देखी जाती है। यही शैली वेद की भी है । इसी को 'नित्य इतिहास' नाम से कहा जाता है। इसलिये "इन्द्र ने दध्यङ् की हड्डियों से ६६ वृत्रों को मारा है" इस प्रकार के प्रयोग से वेद यही बताना चाहता है कि ऐ लोगो ! सदा इस नियम को ध्यान रखो कि जिस राजा का सेनापति दध्यङ् गुण वाला है वही वृत्रों पर विजय पाता है। आप कहेंगे, यहाँ तो 'जघान' यह लिट् का प्रयोग है और लिट् अनद्यतन परोक्ष-भूत में आता है। इसका उत्तर आपको वेद से ही मिल जायेगा। वेद तो आज हुई घटना के साथ भी लिट् का प्रयोग करता है, "अद्या ममार स ह्यः समान ऋग् १०.५५.५"—कल जो जी रहा था वह आज मरा पड़ा है। इससे परिणाम निकलता है कि वेद में यह नियम नहीं है कि लिट् परोक्षभूत में ही प्रयुक्त हो। पाणिनि मुनि ने तो इसके लिये सूत्र भी बना दिया है—"छन्दसि लिट्" (पा० ३.२. १०५) अर्थात् वेद में लिट् सामान्य भूत में ही प्रयुक्त होता है। इतना ही नहीं, "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" (पा० ३.४.६) वेद में भूतवाची लुङ्, लङ्, लिट् लकार भूत से अतिरिक्त वर्तमान आदि अर्थों के भी द्योतक हैं।

वेदों में जहाँ कहीं हम किसी भूतवाची लकार का प्रयोग देखते हैं वहाँ झट से अर्थ हम परोक्ष-भूत का कर लेते हैं। यहीं गलती कर बैठते हैं। यह गलती होते ही मंत्र इतिहास को बताता हुआ प्रतीत होने लगता है। अर्थ हमें परोक्ष-भूत का न करके अद्यतन-भूत या वर्तमान सूचक भूत या नियम-सूचक भूत का करना चाहिये। जैसे उपर्युक्त मन्त्र में 'जघान' का अर्थ 'मारा था' यह न करके 'मारा है' ऐसा नियम-सूचक अर्थ करना चाहियें। ऐसे ही "शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ऋग् १.२४.१३" इसका अर्थ "तीन खूँटों में बंधे हुए शुनःशेप ने वरुण को पुकारा था" यह न करके "पुकारा है" ऐसा वर्तमान-सूचक अर्थ करना चाहिये। और यह अर्थ करते ही स्वतः भान होने लगेगा कि शुनःशेप कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हो सकता। इस प्रकार इस नियम को ध्यान में रखने से वेद के अनेक ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले वर्णन बिना किसी खींचातानी के बिल्कुल सामान्य प्रतीत होने लगेंगे।

देवापि और शन्तनु की कहानी

इन्द्र तथा दधीच की कथा का अभिप्राय दिखाकर हम वेद की एक और कहानी पर आते हैं। वह है देवापि और शन्तनु की कहानी। ऋग् १०.९८.७ में वृष्टियज्ञ का वर्णन है । राजा शन्तनु ने देवापि को पुरोहित बना कर वृष्टि-यज्ञ कराया है और उससे राज्य में वर्षा हो गई है। देखिये मन्त्र क्या कहता है—

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।

देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥ १०.९८.७

राजा शन्तनु यज्ञ कराने के लिये देवापि को पुरोहित बनाता है । वह देवापि 'राज्य में वर्षा हो' ऐसा मन से ध्यान करता है। देवापि देवश्रुत है। वह वर्षा की याचना करता हुआ यज्ञ कर रहा है।

उसके मन्त्रपाठ आदि में यदि कोई त्रुटि संभावित हो तो बृहस्पति नामक ब्रह्मा उस त्रुटि निवारण के लिये उपस्थित है।

अब देखिये, ऐतिहासिक सम्प्रदाय की कुछ ऐसी प्रवृत्ति है कि वेद में जहाँ कहीं कोई नाम आया झट उसे खींचतान कर इतिहास के साथ मिला दिया। यदि उनका बस चले तो वे वेद के सूर्य को राजा सूर्य बना दें, वेद के वायु को राजा वायु बना दें, वेद के 'अश्व' को राजा अश्वपति के साथ मिला दें, पर करें क्या उनके दुर्भाग्य से ये शब्द सूरज, हवा, घोड़े आदि भौतिक अर्थों में ऐसे प्रसिद्ध हैं कि चाहें तो भी वे इन्हें तोड़-मरोड़ नहीं सकते। जहाँ भी अर्थ कुछ लुप्त सा हो गया है वहाँ उन्होंने मौका हाथ से नहीं जाने दिया। अश्विनों को आखिर उन्होंने दो घुड़-सवार राजा बना ही डाला, जिसका संकेत "पुण्यकृतौ राजानौ इत्यैतिहासिका:" इन शब्दों में निरुक्तकार ने किया है। यहाँ जिस प्रसंग को हम ले रहे हैं वहाँ भी ऐतिहासिक नहीं चूके। उन्होंने यह इतिहास कल्पित कर लिया है—

"देवापि और शन्तनु नाम के दो कुरुवंशी भाई थे। शन्तनु उनमें छोटा था। नियमानुसार राज्य बड़े भाई देवापि को मिलना चाहिये था। किन्तु शन्तनु छोटा होते हुए भी स्वयं राजा बन बैठा। यह देख कर देवापि तप करने वन को चला गया। शन्तनु ने बड़े भाई का हक छीन कर अधर्म किया था, इसलिये १२ वर्ष तक उसके राज्य में वृष्टि नहीं हुई। प्रजा भूखी मरने लगी। अब वह चिन्तित हुआ। ब्राह्मणों ने उससे कहा, तूने अधर्म किया है, इसलिये वर्षा नहीं होती। तब वह बड़े भाई को मनाने पहुँचा। देवापि ने कहा, अब राज्य तो मैं नहीं लूँगा, तुम वृष्टि-यज्ञ करो, मैं तुम्हारा पुरोहित बन जाऊँगा। ऐसा ही किया गया, तब राज्य में वर्षा हो गई।"

यदि यह कहानी वेद के वर्णन को ही अधिक रोचक बनाने के उद्देश्य से गढ़ी गई हो तब तो ठीक है। किन्तु यदि इसका आशय यह हो कि ऐसी कोई ऐतिहासिक घटना हुई थी जिसे वेद बताता है तो यह एक मिथ्या भ्रान्ति ही है। देवापि और शन्तनु के कुरुवंशी भाई होने, छोटे के राजा बन बैठने, १२ वर्ष वृष्टि न होने आदि का यहाँ वेद में कोई उल्लेख नहीं है। यह सब तो कथानक बनाने वालों की अपनी कल्पना है। वेद के शन्तनु, देवापि ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं किन्तु गुणवाची नाम हैं। यदि इसमें किसी को एतराज हो तो हम कहेंगे कि जहाँ वेद में गोपति या भूपति शब्द आता है वहाँ उसे गुणवाची नाम अर्थात् 'पृथ्वी का मालिक राजा' क्यों समझते हो, ऐसा क्यों नहीं मानते कि गोपति या भूपति किसी राजा विशेष के नाम हैं। यदि यह कहो कि गोपति या भूपति नाम का कोई राजा इतिहास में मिलता नहीं तो हम कहेंगे कि जब वेद को ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया तब इसकी क्या आवश्यकता है कि किसी दूसरी ऐतिहासिक पुस्तक में भी उसका ज़िक्र मिले। और दूसरे यह कि इतिहास क्या जितने हुए हैं सभी का मिलता है? क्या अनेक बड़े २ शक्तिशाली राजा, महर्षि आदि इतिहास में लुप्त नहीं हो गये हैं? वैसे ही गोपति, भूपति भी लुप्त हो गये होंगे, जिनका सौभाग्य से वेद में नाम बचा रह गया है। असल बात तो यह है कि 'शन्तनु' और 'देवापि' का अर्थ भी यदि आज गोपति, भूपति की तरह प्रसिद्ध रहा होता तो कोई यह कहने का साहस न करता कि शन्तनु, देवापि ऐतिहासिक नाम हैं। अस्तु, यास्क ने शन्तनु का अर्थ किया है—"शन्तनु:=शंतनोऽस्त्विति वा, शमस्मै तन्वा अस्त्विति वा, निरुक्त २.१२।" 'शम्' और 'तनु' इन दो शब्दों से मिल कर यह बना है। जो राजा ऐसा प्रयत्न करता है कि मेरे राज्य में सब को तनु-सुख प्राप्त हो, सब शरीर नीरोग, प्रसन्न, सुखी रहें

और इसीप्रकार प्रजा भी जिस के लिये यह चाहती है कि हमारा राजा शरीर से स्वस्थ, सुखी होता हुआ जुग-जुग जीता रहे, वह राजा शन्तनु कहलाता है। या यों कहना चाहिये कि 'शन्तनु' नाम से राजा का यह गुण सूचित होता है। उसके राज्य में यदि कभी दैवयोग से अनावृष्टि हो जाये तब उसे चाहिये कि 'देवापि' गुण वाले व्यक्ति को पुरोहित बना कर वृष्टि-यज्ञ कराये। 'देवानप्नोतीति देवापि:" वह उच्च विद्वान् देवापि होगा जिसने देव को अर्थात् भगवान् को या दिव्यगुणों को प्राप्त कर रखा है। पौरोहित्य कर्म का अधिकार प्रत्येक को नहीं होता, देवापि गुण वाले से ही यज्ञ कराना चाहिये यह सूचित करने के लिये ही जान-बूझ कर वेद ने पुरोहित को देवापि नाम से स्मरण किया है। मन्त्र में में ही इसकी साक्षी मिल जाती है, क्योंकि देवापि के साथ उसका विशेषण 'देवश्रुत' पढ़ा हुआ है, जोकि देवापि के अर्थ को खोल देता है। वेद की यह शैली हमें अनेक स्थानों पर देखने को मिलती है कि वह मन्त्र में ही किसी गूढ़ शब्द को उसके सदृश एक और शब्द रख कर खोल देता है। 'देव' का अर्थ बादल भी होता है, जो बादल को प्राप्त कर सकता है अर्थात् जिसमें यह सामर्थ्य है कि बादल को बरसा कर नीचे जमीन पर ले आये वह वृष्टि-यज्ञ में निपुण विद्वान् भी देवापि कहलायेगा। हमने देखा कि वेद के शन्तनु और देवापि भी दध्यङ् की तरह ऐतिहासिक नहीं है। हम यह नहीं कहते कि शन्तनु नाम का कोई व्यक्ति इतिहास में हुआ ही नहीं। वह हुआ होगा, जब वह बालक होगा तब उसके माता-पिता ने वेद से शन्तनु नाम को उसके लिये चुन लिया होगा। जैसे आज-कल हम रामायण महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर राम, लक्ष्मण, अर्जुन, भीम आदि नाम रख लेते हैं। नाम-सादृश्य को देख कर इतिहासकारोंने उसी ऐतिहासिक शन्तनु के साथ वेद की कहानी को भी जोड़ दिया, मानों वह उसी के साथ घटी हो।

मित्रावरुण और उर्वशी से वसिष्ठ की उत्पत्ति

एक और आख्यान को लीजिये। वेद में वसिष्ठ के जन्म के सम्बन्ध में लिखा है—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ–उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः।

द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन, विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ऋग् ७।३३।११

"हे वसिष्ठ! तू मित्र और वरुण का लड़का है, हे ब्रह्मन्! तू उर्वशी के मन से पैदा हुआ है।" किंतु क्या ये पुराणों के वे ही वसिष्ठ ऋषि हैं जिनके जन्म के बारे में लिखा है कि उर्वशी नामक अप्सरा को देखकर मित्र-वरुण का वीर्य स्खलित हो गया, वह घड़े में जाकर गिरा, उससे वसिष्ठ ऋषि पैदा हुए! क्या यह संभव है? वेद के वसिष्ठ ऋषि तो कोई और ही हैं। पूरे मन्त्र के अर्थ पर दृष्टि-पात कीजिये—

(वसिष्ठ, उत मैत्रावरुणः असि) हे वसिष्ठ! तू मित्र और वरुण का लड़का है, (ब्रह्मन्, उर्वश्या मनसः अधिजातः) हे ब्रह्मन्! तू उर्वशी की मनोकामना से पैदा हुआ है। (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य नियम के अनुसार (द्रप्सं स्कन्नं त्वा) बूँद के रूप में गिरे हुए तुझको (विश्वे देवाः पुष्करे अददन्त) सब देवों ने तालाब में पहुँचा दिया है।

वेद का यह वसिष्ठ वर्षा की बूँद नहीं तो और क्या है? अथर्व ५।१६।१५ में स्पष्ट ही वर्षा-जल को मित्रवरुण का लड़का कहा है—"न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभिवर्षति"। अन्यत्र भी मित्र और वरुण वर्षा

के ही अधिपति माने गये हैं—"मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती, अथर्व ५।२४।५"। इसलिये मित्र-वरुण से पैदा हुआ यह वसिष्ठ वर्षाजल ही है। ये मित्र-वरुण दो वायुयें हैं जो वर्षा में सहायक होती है। उर्वशी क्या है? उर्वशी है 'बिजली'; यह ऋग् ५.४१.१९ से स्पष्ट है। जब मित्र-वरुण या ठण्डी-गरम हवाओंका मेलहोता है और आकाश में बिजली चमकती है तब वर्षा होती है। इस प्रकार वर्षाजल उर्वशी तथा मित्र-वरुण का पुत्र होता है और मन्त्र के वर्णन के अनुसार बूँद रूप में बरस कर वह तालाब आदि में चला जाता है।

आप कहेंगे, तुम हो बड़े होशियार! वेद में भी तो लिखा है, "कुम्भे रेत: सिषिचतु: समानम्" मित्र-वरुण ने घड़े में वीर्य-सेचन किया, "ततो जातमृषेमाहुर्वसिष्ठम्" उससे वसिष्ठ ऋषि पैदा हुए। इसे आप चुपके से टाल ही गये! नहीं, टाल नहीं गये, उस मन्त्र को भी ले लीजिये—

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिसिचतुः समानम्।

ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥ ऋग् ७।३३।१३

यहाँ भी वसिष्ठ वर्षा की बूँद ही है। रेतस शब्द निघण्टु के अनुसार जलवाची है। 'कुम्भ' साधारण कुम्हार का बना हुआ छोटा सा घड़ा नहीं है, बल्कि महान् कुम्भकार परमेश्वर से रचा हुआ भूतल रूपी बृहत् कुम्भ है। अब मन्त्र का अर्थ देखिये—

(सत्रे ह जातौ) आकाश में पैदा हुए २ (इषितौ) ईश्वरीय नियमों से प्रेरित किये हुए [मित्र और वरुण वायुओं] ने [समानम्] एक साथ मिलकर (कुम्भे रेत: सिषिचतु:) भूतल रूपी कुम्भ में जल को सिंचित किया अर्थात् भूमि पर जल बरसाया। (तत: मध्यात्) उस बरसे हुए जल में से (मान:) कुछ जल परिमाण (उदियाय) वाष्प बनकर आकाश में चला गया, (तत:) उससे (वसिष्ठं ऋषिं जातमाहु:) वसिष्ठ ऋषि को पैदा हुआ बताते हैं।

यहाँ इस प्राकृतिक नियम को दर्शाया गया है कि मित्र-वरुण हवायें चलने से जो पानी पृथ्वी पर बरसता है उसमें से बहुत सा अंश सूर्यताप द्वारा वाष्प बनकर फिर आकाश में चला जाता और बादल बन जाता है। वह बादल फिर बूँद रूप में बरसकर वसिष्ठ कहलाता है। इन्हीं मन्त्रों को लेकर बृहद्देवता में इस आशय की कहानी रच दी गई है कि उर्वशी के दर्शन से मित्र-वरुण का रेत: स्खलित होकर उसके घड़े में गिरने से वसिष्ठ ऋषि पैदा हुए थे। संभव है वह लिखी गई हो वेद के वर्णन को रोचक बनाने की दृष्टि से, किंतु अब तो वह भ्रान्ति पैदा करने का ही कारण बन रही है। सायण ने बृहद्देवता की कहानी को उद्धृत करके ही संतोष कर लिया है कि बस मन्त्र की व्याख्या हो गई। सायण भी संतुष्ट, पाठक भी संतुष्ट कि बस सच्चा-झूठा जैसा भी यह किस्सा है उसी को लेकर मन्त्र रचा गया है, यद्यपि बात है उल्टी अर्थात् मन्त्र को लेकर किस्सा रचा गया है।

मन्त्रों पर कथायें आज भी रची जा सकती हैं

जैसे बृहद्देवता या पुराण आदि में मन्त्रों को लेकर कथायें रच ली गई हैं वैसी कथायें आज भी अनेक, अनेक क्या प्राय: सभी, मन्त्रों पर रची जा सकती हैं। नमूना चाहें तो देखिये। ऋग्वेद का पहला ही मन्त्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥

इसका ऋषि है मधुच्छन्दा। बनाइये कहानी–मधुच्छन्दा को कोई यज्ञ करना था। उसके लिये वे पुरोहित खोजने लगे। कोई अच्छा पुरोहित उन्हें नहीं मिला। किसी ने उन्हें बताया कि अग्नि नाम के एक बड़े भारी विद्वान् 'पृथिवी' नाम की नगरी में वास करते हैं, पर वे दक्षिणा बहुत लेते हैं। मधुच्छन्दा उन्हीं के पास जा पहुँचे और अपना विचार उनसे कह दिया कि मैं आप को पुरोहित वरण करना चाहता हूँ। अग्नि ने उत्तर दिया कि हम तुम्हारा पौरोहित्य तो स्वीकार कर लेंगे, पर दक्षिणा में तुम्हें लक्ष स्वर्णमुद्राओं के बराबर रत्न देने होंगे। मधुच्छन्दा ने उनकी शर्त स्वीकार कर ली और उन्हें पुरोहित बनाकर यज्ञ कराया। इस मन्त्र में वह उन्हीं अग्नि की स्तुति कर रहा है—"मैं अग्नि देव की पूजा करता हूँ, जिन्होंने मेरे यज्ञ का पुरोहित होना स्वीकार कर लिया है, जो होता नामक ऋत्विज् बन गये हैं, जो दक्षिणा में सब पुरोहितों से अधिक रत्नों को लेने वाले हैं।" क्या कोई ऐतिहासिक यह कहेगा कि यह एक ऐतिहासिक कहानी है और इसी इतिहास को लेकर ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र रचा गया है? एक और मन्त्र पर आइये। अथर्व ४.६ का पहला मन्त्र यह है--

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकाराऽरसं विषम्॥

असल में तो यहाँ सूर्य की विघ्ननाशक शक्ति का वर्णन है। पर उसे छोड़िये। इस प्रकार मन्त्र का अर्थ करिये—"प्राचीनकाल में दस सिरों वाला और दस मुखों वाला एक श्रेष्ठ ब्राह्मण पैदा हुआ था। उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने सोम-रस पी लिया और इस प्रकार विष को निष्प्रभाव कर दिया।" यह दस सिर और दस मुखों वाला ब्राह्मण तो आप बिना पूछे ही कह उठेंगे कि रावण है। तो इस पर हम यह कहानी बनायेंगे—

"एक बार रावण कुछ राक्षसों समेत वन में विहार करने निकला। मार्ग में अचानक उसे एक बड़े ज़हरीले साँप ने काट लिया। तुरन्त सारे शरीर में विष फैल गया। बड़े २ वैद्य बुलाये गये, विषनाशक जड़ी-बूटियाँ मंगवाई गईं। पर सब उपाय निष्फल हुए। देवता भी रावण के भय से काँपते थे। इस लिये जब उन्होंने सुना तब शीघ्र ही चिकित्सा के लिये प्रसिद्ध वैद्य अश्विदेवों को भेजा। अश्वीदेव अपने साथ सोम का अमृतकलश लेते आये थे। उन्होंने रावण को पिला दिया। उसे पीते ही विष का प्रभाव दूर हो गया।"

अब हम ऐतिहासिक सम्प्रदाय वालों से पूछते हैं कि क्या वे यह मानेंगे कि इन कथाओं को सूचित करने वाले ये वेद मन्त्र हैं? उत्तर हमें पहले से ही मालूम है, वे सिर हिलाकर कहेंगे, नहीं भाई, कैसे माना जा सकता है, ये कहानियाँ तो तुमने पीछे से बना ली हैं। अच्छा, अब एक काम करो, ऐसे सौ–दो–सौ मन्त्रों पर आख्यायिकायें बनाकर संस्कृत में भोज पत्रों पर या जीर्ण-शीर्ण कागज़ों पर ऐसी स्याही से और ऐसे अक्षरों में लिख लो कि वे पुराने ज़माने की लिखी प्रतीत हों। उन्हें होशियारी के साथ पेटी में बन्दकर किसी ऐसे स्थान के समीप गाड़ दो जहाँ ऐतिहासिक खुदाई हो रही हो। जब वह पेटी निकलेगी तब वह ऐतिहासिक खोज की एक बहुमूल्य वस्तु समझी जायेगी। उसे देखकर ऐतिहासिक सम्प्रदाय वाले तो नाच उठेंगे कि आहा, बहुत से वेद मन्त्रों का मूल स्रोत पता लग गया! बात क्या हो गई? अभी तो आप कहते थे कि ये कहानियाँ तो तुमने पीछे से बना ली हैं इसलिये अमान्य हैं, और अभी देखते २ वे अमान्य से मान्य कैसे हो गईं? क्षण भर पहले तो वे हमारी बनाई हुई थीं और अब वे वेद का मूलस्रोत बन गईं! धन्य है ऐतिहासिक सम्प्रदाय की माया! जिस ऐतिहासिक पक्ष

का आधार ऐसा निस्सार हो वह भी क्या कभी वेदार्थ में प्रामाणिक माना जा सकता है? इन हमारी कहानियों में तथा बृहद्देवता, पुराण आदि की कहानियों में कुछ भी अन्तर नहीं है। वे भी इसी प्रकार वेद मन्त्रों को लेकर बनाई गई हैं, न कि वेद मंत्रों की मूल हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि हम आज बना रहे हैं, उन्होंने कुछ समय पहले की बना रखी हैं। हैं दोनो ही वेद से लाखों-करोड़ों बरस पीछे की।

आप देखकर हैरान होंगे कि कैसे २ साधारण मन्त्रों पर जिनमें आपको स्वप्न में भी ख्याल नहीं हो सकता कि यहाँ भी कोई इतिहास की बात है, कहानियाँ बन गई हैं। ऋग् ७.१०४ का १६ वाँ मन्त्र है—

यो माऽयातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥

कोई पुण्यात्मा मनुष्य कह रहा है कि यदि कोई पापी मुझ पर यह लाञ्छन लगाता है कि मैं राक्षस हूँ और इसके विपरीत अपने सम्बन्ध में वह यह घोषणा करता है कि मैं निष्पाप-पवित्र हूँ, उस लम्पट मनुष्य को भगवान् दण्डित करे। पर बृहद्देवताकार ने यहाँ भी इतिहास बना डाला है। इस सूक्त का ऋषि वसिष्ठ है, इसलिये वह कहता है कि एक वार महात्मा वसिष्ठ के सौ पुत्रों को मार कर एक जिघांसु राक्षस वसिष्ठ का रूप धर कर आया और वसिष्ठ से कहने लगा—'तुम राक्षस हो, वसिष्ठ तो देखो मैं हूँ, इस पर वसिष्ठ ने यह ऋचा बनाई है। आप ही बताइये, यदि इस प्रकार वेद से इतिहासों को खोजा जाने लगे तो भला किस मन्त्र से इतिहास नहीं निकल सकता। इसीलिये हम कहते हैं कि वेदार्थ की यह शैली ही गलत है।

वेद में प्रयुक्त ऋषियों के नाम

अच्छा, अब ऋषियो पर आइये। वेदमन्त्रों में अनेक ऐतिहासिक ऋषियों के नाम प्रयुक्त हुए हैं। अथर्व १८.११के मन्त्र१५,१६ में ही कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सोभरी, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप, वामदेव, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम इतने ऋषियों के नाम आ गये हैं। इन्हें देख कर यह भ्रम होने लगता है कि वेद को इन-इन नामों से शायद ऐतिहासिक ऋषि ही अभिप्रेत हैं। पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। तो फिर वेद के ये ऋषि कौन हैं? कहीं तो ये यौगिक अर्थों के वाची हैं, कहीं शारीरिक इन्द्रियों के वाची तथा कहीं सूर्य-रश्मियों के वाची हैं। ऋग् १.४५.३ को देखिये—

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्॥

प्रस्कण्व प्रार्थना कर रहा है कि "हे जातवेदस् अग्नि, जैसे तू प्रियमेध, अत्रि, विरूप तथा अंगिरा की पुकार को सुनता है वैसे ही मेरी पुकार को भी सुन।" इसीप्रकार ऋग् १०.१५० में यह मन्त्र आया है—

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः॥

यहाँ प्रार्थना करने वाला वसिष्ठ है। वह कहता है—"अग्नि ने पुकारे जाने पर समय २ पर अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व, त्रसदस्यु की रक्षा की है। इसलिये मैं वसिष्ठ भी उसे रक्षार्थ पुकार रहा हूँ।"

ऐतिहासिक कहेंगे कि कण्व, प्रस्कण्व, प्रियमेध, अत्रि, विरूप, अंगिरा, भरद्वाज, गविष्ठिर, त्रसदस्यु ये सब यहाँ ऐतिहासिक ऋषि अभिप्रेत हैं। किन्तु देखिये, निरुक्तकार क्या कहते हैं। "प्रियमेधः प्रिया अस्य मेधा। 'प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः। अंगारेषु अंगिराः। (अत्रिः) न त्रय इति। भरणाद् भरद्वाजः। विरूपो नानारूपः। निरुक्त ३. १७"—प्रियमेध वह है जिसे बुद्धि प्यारी है। कण्व का पुत्र प्रस्कण्व है और कण्व निघ० ३. १५ में मेधावी वाची नामों में पठित है। इसलिये प्रस्कण्व का अर्थ हुआ मेधावी का पुत्र। अंगिरा वह है जो इतना तपस्वी है कि मानो अंगारों के बीच बैठा हुआ है। त्रिविध ताप से मुक्त व्यक्ति 'अत्रि' है। वह मनुष्य भरद्वाज है जिसमें बल भरा पड़ा है। विरूप है नाना रूपों वाला। अर्थात् ये सब नाम जोकि ऐतिहासिक ऋषियों के प्रतीत होते हैं, वास्तव में गुणवाची यौगिक नाम हैं। इसके अनुसार पहले मन्त्र का भाव यह होगा कि—"हे परमेश्वर! जैसे तू मेधाप्रिय व्यक्ति की, सन्तापरहित व्यक्ति की, नाना शुभ रूपों वाले की और तपस्वी की पुकार को सुनता है वैसे ही मेरी पुकार को भी सुन, क्योंकि आखिर मैं भी तो बुद्धिमान् का ही बेटा हूँ।" दूसरे मन्त्र में गविष्ठिर, त्रसदस्यु, वसिष्ठ ये नाम नये आये हैं। इन्हें भी यौगिक ही समझना चाहिये। ऋषि दयानन्द के अनुसार "यो गवि सुशिक्षितायां वाचि तिष्ठति स गविष्ठिरः। त्रस्यन्ति दस्यवो यस्मात् स त्रसदस्युः। अतिशयेन वासयिता, अतिशयेन वसुः, अतिशयेन विद्यासु कृतवासः, अतिशयेन ब्रह्मचर्ये कृतवासो वा वसिष्ठः।" यदि वेद में ऋषियों के नाम यौगिक नहीं हैं तो हम पूछते हैं कि "आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब, ऋग् १. २०. ११" यहाँ इन्द्र को कौशिक क्यों कहा गया है? कौशिक तो कुशिक का पुत्र विश्वामित्र है, इन्द्र कौशिक कैसे हो गया? सायण की तरह अनुक्रमणिका का हवाला देकर यह कह देने मात्र से काम नहीं चल सकता कि इन्द्र ही विश्वामित्र के रूप में कुशिक के घर में जन्मा था, इसलिये इन्द्र को वेद में कौशिक कह दिया गया है। यह तो जैसे तैसे अपनी बात को रखने के लिये एक बहाना मात्र है।

यह तो हुआ व्यक्तिवाची नामों का नमूना। इसके अतिरिक्त ऋषियों के नाम वेद में इन्द्रियों के वाची भी होते हैं। वेद में लिखा है—

"सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे। यजु० ३४. ५५"

शरीर के अन्दर सात ऋषि बैठे हुए हैं। शतपथ के अनुसार इन सातों ऋषियों के नाम गोतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, और अत्रि हैं। पर ये ऋषि यदि ऐतिहासिक ऋषि हों तो शरीर में आकर कैसे बैठ सकते हैं? दूर जाने की आवश्यकता नहीं, वेद ने स्वयं ही इस पहेली को खोल दिया है। "कः सप्त खानि विततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणीमुखम् अथर्व १०. २. ६" दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आंखें और एक मुख ये ही शरीर के सात ऋषि हैं। इसीप्रकार यजुर्वेद के १३ वें अध्याय में कई ऋषियों का शारीरिक इन्द्रियों से सम्बन्ध दर्शाया गया है। उस वर्णन के अनुसार प्राण वसिष्ठ है, मन भरद्वाज है, चक्षु जमदग्नि है, कान विश्वामित्र है, वाणी विश्वकर्मा है। देखिये—

वसिष्ठ ऋषिः·······प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः।

भरद्वाज ऋषिः·······मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः।

जमदग्निर्ऋषिः……चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः।

विश्वामित्र ऋषिः……श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः।

विश्वकर्म ऋषिः……वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः। यजु० १३. ५४-८५

इस प्रकार स्वयं वेद की ही अन्तःसाक्षी से स्पष्ट है कि ऋषि परक नाम इन्द्रियों के वाची भी होते हैं। इसीलिये ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी अनेक स्थानों पर इन्हें इन्द्रियों का वाची प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण के लिये शतपथ के निम्न वाक्यों पर दृष्टि डालिये—"प्राणो हि वसिष्ठ ऋषिः। मनो वै भरद्वाज ऋषिः। चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः। श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः। वाग् वै विश्वकर्मर्षिः। प्राणो वा अङ्गिराः।" छान्दोग्य उपनिषद् में एक प्रकरण में आया है कि "यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति" जो वसिष्ठ को जान लेता है वह स्वयं भी अपने सम्बन्धिजनों के बीच में 'वसिष्ठ' हो जाता है। आप कहेंगे, वाह! यह कौन कठिन बात है, वसिष्ठ को तो हम भी जानते हैं, वे एक ऋषि हुए हैं जो कि इतिहास में प्रसिद्ध हैं। पर उपनिषद् कहती है, नहीं, यदि उन ऋषि को तुम वसिष्ठ समझे हो तो कुछ भी नहीं समझे, वसिष्ठ तो वाणी का नाम है, "वाग् वाव वसिष्ठः"। इस तरह हमने देखा कि ऋषियों के इन्द्रियवाची होने का जो बीज वेद में मौजूद है उसे ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों ने भी पुष्ट किया है। इस तथ्य को ध्यान में रखने से अनेक वेदमन्त्रों का अर्थ बड़ा सुन्दर घटित हो जाता है। एक मन्त्र है—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥ यजु० ३. ६२

यहाँ स्वयं वेद के तथा शतपथ के आधार से जमदग्नि आँख है, कश्यप प्राण है। मनुष्य प्रार्थना कर रहा है कि जो बाल्य, यौवन तथा स्थविरत्व की त्रिविध आयु अथवा तीन सौ साल की आयु बड़े २ देवपुरुषों को प्राप्त हुआ करती है वह मुझे भी प्राप्त हो। पर ऐसी दीर्घायु मुझे नहीं चाहिये जिसमें इन्द्रियाँ शिथिल हो चुकी हों, आँखों से सूझता न हो, कानों से सुनाई न देता हो, जीवनी-शक्ति का ह्रास हो चुका हो। मुझे दीर्घायु मिले तो साथ ही मेरी आँख की शक्ति को और प्राण-शक्ति को भी दीर्घायु मिले। अब यदि यहाँ जमदग्नि का अर्थ जमदग्नि ऋषि तथा कश्यप का अर्थ कश्यप ऋषि करें तो क्या अर्थ में वैसा स्वारस्य रहता है, यह पाठक स्वयं विचार लेवें।

कहीं २ वेद में ऋषियों के नाम सूर्य-किरणों के लिये भी प्रयुक्त हुए हैं। इसीलिये "सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे, यजु० ३४. ५५" तथा "तत्रासत ऋषयः सप्त साकम्, अथर्व १०. २६. ६" इन मन्त्रों के आधिदैवत अर्थ निरुक्तकार ने सूर्यपरक ही दिखाये हैं। सूर्य में भी मानव शरीर की भांति सात ऋषि वास करते हैं। सूर्य के सात ऋषि हैं सात सूर्य-रश्मियाँ। अथर्ववेद में एक मन्त्र आया है—

अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।

अगस्त्यस्य ब्रह्मणा संपिनष्म्यहं क्रिमीन्॥ २. ३२. ३

इस सूक्त का देवता आदित्य ही है। सूक्त प्रारम्भ भी यहीं से होता है, "उद्यन् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु" उदय होता हुआ सूर्य रोग-कृमियों का विनाश करे। उपर्युक्त मन्त्र में मनुष्य कह रहा है कि मैं अत्रि, कण्व, जमदग्नि की तरह और अगस्त्य के बल से रोग-कृमियों को विनष्ट कर देता हूँ। अब यदि

इस समय मन्त्र में अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्त्य को ऐतिहासिक ऋषि मानें तो मन्त्र का देवता सूर्य कैसे हो सकता है ? सूर्य की तो कुछ चर्चा मन्त्र में आई ही नहीं। दूसरे यह कि कृमियों को मारने के लिये ऋषियों से उपमा देना घटता भी नहीं; क्योंकि ये प्राचीन ऋषि कृमियों को मारने में तो प्रसिद्ध थे ही नहीं, उपमान तो उसी को बनाया जाता है जो उस कार्य में प्रवीण और प्रसिद्ध हो। असल में अत्रि, कण्व, जमदग्नि यहाँ सूर्य-किरणें हैं और अगस्त्य सूर्य है। 'सूर्य-किरणों की तरह मैं रोग के कीटाणुओं की विनष्ट करता हूँ' यह उपमा जंचती भी है, क्योंकि सचमुच ही कृमियों के संहार में सूर्य का मुकाबला करने वाला दूसरा नहीं है।

आशा है ऋषिविषयक इस विवेचन से पाठकों को वेद में ऋषियों के नाम किन अर्थों में आये हैं इसका कुछ आभास मिला होगा।

उपसंहार

वेद के ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले कुछ स्थलों को खोलने का हमने यत्न किया है। किन्तु ऐसे प्रसंग इतने अधिक हैं कि इस छोटे से लेख में सभी पर विचार कर सकना असंभव है। कहा जाता है कि इक्ष्वाकु, दिवोदास, सुदास,नहुष, ययाति, यदु, तुर्वश, पुरु, द्रुह्यु, आयु, स्वनय, भावयव्य, असमाति आदि अनेक राजाओं के युद्ध आदि का इतिहास वेद में मिलता है। ऋग् ७. १८ में सुदास् पैजवन की युद्धविजय का तथा उसके दान का वर्णन है; ऋग् १०.३३ में त्रसदस्यु के पुत्र कुरुश्रवण की स्तुति है; ऋग् ८. ४६ में कनीतपुत्र पृथुश्रवा के दान की स्तुति है। ऐतिहासिक विद्वान् कहते हैं कि ये इतिहास के राजा हैं। इनका राजा होना तो हम भी मानते हैं, किन्तु ये ऐतिहासिक राजा नहीं हैं; राजा के गुणवाची नाम हैं जिनसे यह द्योतित होता है कि राजा को कैसा होना चाहिये। सुदास् पैजवन को ही लीजिये। राजा को प्रशस्त दानी तथा स्पर्धनीय वेग वाला शूरवीर होना चाहिये यह इस नाम से सूचित होता है। यास्काचार्य कहते हैं—"सुदाः कल्याणदानः। पैजवनः पिजवनस्य पुत्रः। पिजवनः पुनः स्पर्धनीयजवः, निरु० २.२४" अर्थात् राजा को सुदास् इस लिये कहते हैं कि वह उत्तम-उत्तम दान करता है, पैजवन का अर्थ है पिजवन का पुत्र। वेद की यह शैली है कि जिसे किसी का पुत्र कहा जाता है उसमें उस गुण की अतिशयिता बताना अभिप्रेत होता है। हिन्दी में भी तो कहते हैं, "शाबाश, बहादुर के बेटे !" यहां बहादुर के बेटे का आशय 'कमाल की बहादुरी वाला' यही होता है। इसीप्रकार यहाँ पिजवन के पुत्र' का अर्थ 'अतिशय पिजवन' यह होगा। पर 'पिजवन' क्या वस्तु है ? 'जव' का अर्थ तो 'वेग' प्रसिद्ध ही है, 'पि' स्पर्धा अर्थ में है, जैसे 'पि-दधाति' वहाँ 'पि' बन्द करने अर्थ में है। तो 'पिजवन' वह हुआ जिसका वेग स्पर्धनीय है। पैजवन हुआ इसका पुत्र, अर्थात् जिसमें यह वेग का गुण बहुत ही कमाल का है। तो 'सुदास् पैजवन' नाम से राजा के दो गुण सूचित हुए। और, यह देखने लायक बात है कि इस नाम से जो गुण सूचित होते हैं उन्हीं की ऋग् ७.१८ में स्तुति भी की है, अर्थात् एक तो दान की तथा दूसरे उसकी वीरता या युद्ध करने के सामर्थ्य की। इसी प्रकार कुरुश्रवण तथा पृथुश्रवा भी राजा के गुणवाची नाम ही हैं। "कुरवः कर्तारः स्तोमानां, तान् शृणोतीति कुरुश्रवणः", जो प्रार्थना करने वालों की प्रार्थना को सुनता है वह राजा कुरुश्रवण है। 'पृथुश्रवा' वह है जिसकी विस्तृत कीर्ति चारों तरफ़ फैली हुई है। जो इन नामों को ऐतिहासिक नाम मानने का आग्रह करते हैं उनसे हम पूछते

हैं कि ऋग् १०.८७ में 'रक्षोहा अग्नि' की भी तो स्तुति है, वहां राक्षसों को मारने वाला अग्नि नाम का कोई ऐतिहासिक राजा ऐसा अर्थ क्यों नहीं करते ? जिसका अर्थ अप्रसिद्ध हुआ उसे तो झट से ऐतिहासिक नाम मान बैठना और जहाँ दूसरा यौगिक या रूढ़ अर्थ प्रसिद्ध हुआ वहाँ वह अर्थ कर देना यह एक प्रवंचना नहीं तो और क्या है !

सायण ने तो वेदमन्त्रों को खींचतान कर ऐतिहासिक बनाने में कमाल ही कर दिया है। यह आश्चर्य है कि अपने प्रारंभिक उपोद्घात में तो उसने मीमांसा के सूत्रों का हवाला देते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं इसलिये उनमें इतिहास नहीं हो सकता, किंतु भाष्य करते हुए मानो वह अपनी इस पूर्व की हुई स्थापना को भूल गया है और जहां भी उससे बन पड़ा है वह मन्त्रों में इतिहास दिखाने से नहीं चूका है। कवि, देवक, चयमान, मन्यमान जैसे प्रसिद्ध पदों तक को उसने व्यक्तियों की संज्ञायें मान लिया है। किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि कहीं २ सायण ने दोनों अर्थ दे दिये हैं कि इसका यह इतिहास-परक अर्थ भी हो सकता है और यह यौगिक अर्थ भी हो सकता है। उदाहरणार्थ ऋग् २.१३.११ में 'जातुष्ठिर' पद का भाष्य करते हुए सायण कहता है कि या तो इसे किसी व्यक्ति का नाम समझ लो या इसका अर्थ है 'सदास्थिर' रहने वाला। इससे प्रतीत होता है कि सायण ने जो ऐतिहासिक अर्थ दिये हैं उनके बारे में अनेक स्थानों पर उसे स्वयं निश्चय नहीं था, उसने वे इतिहास-परक अर्थ अटकलपच्चू से ही लिख दिये हैं। यदि उसे बहकाने के लिये पुराण आदि में लिखी कहानियां उसके सामने न होतीं तो शायद वह अपनी पूर्व की हुई प्रतिज्ञा को स्मरण रखता और कहीं भी ऐतिहासिक अर्थ न दिखाता।

इतिहास का भ्रम न हो इसके लिये, वेद को पढ़ते हुए हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वेद के अनेक स्थान ऐसे भी हैं जहाँ किसी एक बात को रोचक ढंग से समझाने के लिये कथा या संवाद का रूप दे दिया गया है। कथाओं या संवादों के द्वारा शिक्षा देने की शैली आज भी एक बड़ी रोचक और प्रिय शैली समझी जाती है। उपनिषदों में इसी शैली को बरता गया है। इसीप्रकार वेद के भी अनेक वर्णन कथात्मक या संवादात्मक हैं। उन्हें सच्चा इतिहास समझ लेना भूल होगी। उदाहरणार्थ, वेद ने यह बताना चाहा है कि भाई-बहिन आदि निकट सम्बन्धियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होने चाहियें तो उसने यम-यमी का एक रोचक संवाद (ऋग् १०.१२)रच दिया है। बहिन भाई से प्रस्ताव करती है कि तू मुझ से विवाह कर ले। भाई कहता है, बहिन ! यह तो सत्पुरुषों की रीति नहीं है, यह तो पाप है। यह संवाद किसी इतिहास को बताने के लिये नहीं किन्तु शिक्षा देने के लिये है। इसीप्रकार वेद में नदियों और विश्वामित्र का संवाद (ऋग् ३.३३), सरमा-पणि-संवाद (ऋग् १०.१०८), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (ऋग् १.१७९), पुरुरवा-उर्वशी-संवाद (ऋग् १०.९५) आदि कृत्रिम संवादों से भिन्न२ शिक्षायें दी गई हैं। इनमें आख्यानात्मक वर्णन को, नामों को और भूतकाल की क्रिया को देख कर इतिहास के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये।

वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, विपाट्, परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता आदि अनेक नदियों के नाम भी आये हैं जिनको अपने इस लेख में हम स्थान नहीं दे सके हैं। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि ये सब नाम भी भारत की भौगोलिक नदियों के वाची नहीं हैं। कई जगह नदीवाची नामों के साथ ऐसे विशेषण या अन्य संकेत दिये हुए मिलेंगे जो भौगोलिक नदियों में घट ही नहीं सकते। कई जगह पूरे

मन्त्र का ही अर्थ घटित नहीं हो सकेगा। जैसे उस मन्त्र (यजु० ३४.११) का क्या होगा जिसमें यह कहा गया है कि समान स्रोत वाली पाँच नदियाँ सरस्वती में जाकर गिरती हैं और सरस्वती आगे चल कर फिर पाँच में फट जाती है। कई जगह ऐसा मालूम होगा कि नदियों का तो कुछ प्रकरण ही नहीं है, नदियाँ कहाँ से आ टपकीं। ये सब प्रमाण इस बात को पकड़वाने में सहायक होंगे कि वेद की नदियाँ भौगोलिक नहीं हैं। वैदिक नदियाँ भौगोलिक नदियों से अतिरिक्त हैं यह रहस्य वेद की 'सरस्वती' से भी स्पष्टत: खुल जाता है। यद्यपि अन्य नदी वाची नाम स्पष्टार्थ वाले नहीं रहे हैं तो भी सौभाग्य से 'सरस्वती' ऐसी बची हुई है जोकि नदी होने के बजाय एक देवी ही अधिक प्रसिद्ध है। यह वेद की इडा, सरस्वती, मही इन तीन प्रसिद्ध देवियों में से एक देवी है। यह विद्या की देवी है। वेद में जो सरस्वती के सूक्त हैं वे सरस्वती नदी की ओर निश्चय ही नहीं लग सकते। वेद की सरस्वती तो हमारे अन्दर ज्ञान (केतु) को उद्बुद्ध करने वाली है, वह कुरुक्षेत्र की सरस्वती नदी नहीं हो सकती। और, नदी वाची शब्दों में सरस्वती शब्द यदि नदी को नहीं बताता तो उसके समकक्ष गंगा, यमुना आदि अन्य शब्द भी नदी-परक नहीं होने चाहियें। क्योंकि यह मानने के लिये हमारे पास कोई कारण नहीं है कि सरस्वती तो नदी न रहे, किन्तु उसके साथ की अन्य नदियाँ नदियाँ ही बनी रहें।

अस्तु, लेख को हम और लम्बा नहीं करना चाहते। अन्त में इतना ही कहना चाहते हैं कि पहले से जमे हुए पौराणिक संस्कारों को अपने अन्दर से निकाल कर हमें स्वतन्त्र रूप से वेद के आशय को खोलने का यत्न करना चाहिये। तब हम इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि वेद के ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले वर्णन वस्तुत: ऐतिहासिक नहीं हैं, किन्तु उनमें एक बड़ी चमत्कारपूर्ण शैली से भिन्न २ शिक्षाओं तथा विचारों को रखा गया है।

ऋग्वेद के ऋषि

[लेखक—विद्याभास्कर, वेद-वेदान्तरत्न, श्री पण्डित उदयवीर जी शास्त्री, न्यायतीर्थ, सांख्य-योगतीर्थ, शास्त्रशेवधि, विरजानन्द वैदिक संस्थान, लाहौर]

आधुनिक रीति पर जब से वेदों का पठन पाठन प्रारम्भ हुआ है, वेदों के सम्बन्ध में विविध विचार जनता के सन्मुख आ रहे हैं। इस छोटे से लेख में हम ऋग्वेद के ऋषियों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। वेदों के स्वाध्याय के समय ऋषि-ज्ञान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऋषि-ज्ञान के बिना मन्त्रार्थ का जान लेना असंभव बताया जाता है। प्राय: सब ही वैदिक ग्रन्थों में वेदार्थ के लिये ऋषि-ज्ञान की प्रशंसा के पुल बांधे गये हैं। और वे ठीक हैं, उनमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं अभी हाल में हमने वेङ्कट माधव की अनुक्रमणी में निम्न श्लोक पढ़े हैं—

ऋषिनामार्षगोत्राणां ज्ञानमायुष्यमुच्यते। पुत्र्यं पुण्यं यशस्यं च स्वर्ग्यं धन्यममित्रहम् ॥
मन्त्राणां ब्राह्मणार्षेयच्छन्दोदैवतविन्न यः। याजनाध्यापनादेति च्छन्दसां यातयामताम् ॥
मन्त्राणां ब्राह्मणार्षेयच्छन्दोदैवतवित्तु यः। याजनाध्यापनाभ्यां स श्रेय एवाधिगच्छति ॥

[माधवानुक्रमणी, ५।१।२.५,७]

इस प्रकार वेदार्थ के लिये ऋषि-ज्ञान की प्रशंसा में प्राचीन वैदिक साहित्य के अनेकों पृष्ठ रंगे